॥ श्रीः ॥

जीवनका उद्देश्य

लेखक—

अनन्तश्रीविभूषित १००८ स्वामी श्रीहरिहरानन्दजी

सरस्वती (श्रीकरपात्रीजी) के शिष्य

स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती

प्रकाशक—

भैरवलाल वथवाल, मारवाड़ी-सेवा-सङ्घ,

वाराणसी

॥ श्रीः ॥

जीवनका उद्देश्य

लेखक—

अनन्तश्रीविभूषित १००८ स्वामी श्रीहरिहरानन्दजी
सरस्वती (श्रीकरपात्रीजी) के शिष्य
स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती

प्रकाशक—

भैरवलाल वथवाल, मारवाड़ी-सेवा-सङ्घ, अस्सी, वाराणसी

प्रार्थना

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणम् ।
नवकंज-लोचन, कंज-मुख, कर-कंज, पद-कंजारुणम् ॥

कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद-सुंदरम् ।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक-सुता-वरम् ॥

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनम् ।
रघुनंद आनँदकंद कौसलचंद दशरथ-नंदनम् ॥

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम् ।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खर-दूषणम् ॥

इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनम् ।
मम हृदय-कंज निवास कुरु, कामादि-खल-दल-गंजनम् ॥

सं० २०२८ प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य—प्रेमपूर्वक पठन

मुद्रक—
मुकुन्ददासगुप्त 'प्रभाकर',
टाइम टेबुल प्रेस, बड़ागणेश,
वाराणसी ।



स्वामी श्रीअनन्तानन्द सरस्वती

श्रीहरिः

नन्दाष्टकम्

सुन्दरगोपालं उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम् ।
वृन्दावनचन्द्रं आनन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम् ॥
वल्लभ-घनश्यामं पूरणकामं अत्यभिरामं प्रीतिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥१॥

सुन्दरवारिजवदनं निर्जितमदनं आनन्दसदनं मुकुटधरम् ।
गुंजाकृतहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम् ॥
वल्लभ पटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥२॥

शोभितसुखमूलं यमुनाकूलं निरुपमशीलं सुखदवरम् ।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरस्वरम् ॥
वल्लभ-अतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचिविमलं तिमिरहरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥३॥

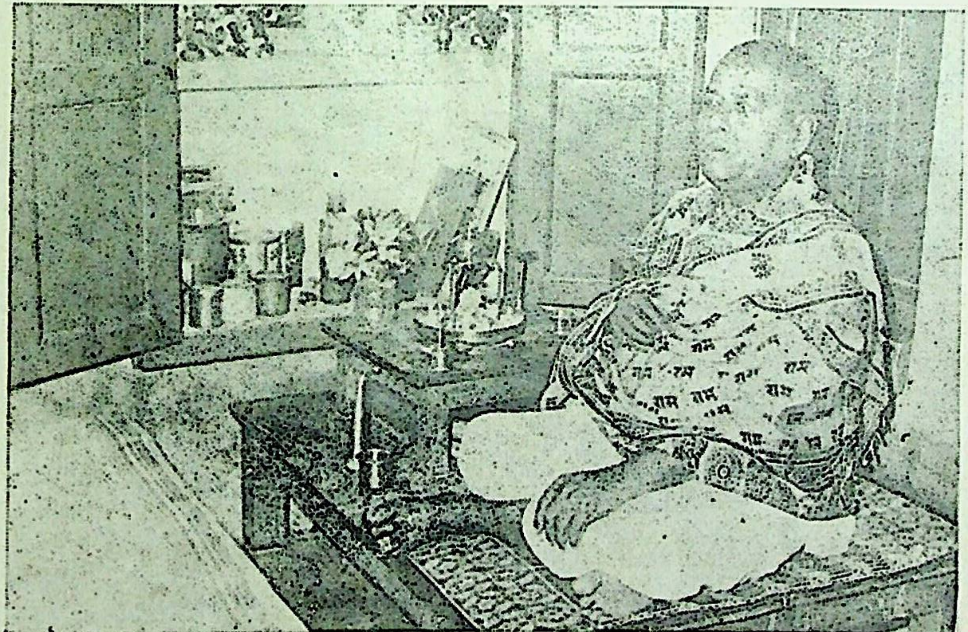
शिर-मुकुट-सुदेशं कुञ्चितकेशं नटवरवेशं कामवरम् ।
मायाकृतमनुजं हलधर-अनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम् ॥
वल्लभ-व्रजपालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥४॥

इन्दीवरभासं प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशीधरम् ।
हितमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगानं चित्तहरम् ॥
वल्लभ-मृदुहासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥५॥

अतिपरमप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरम् ।
मोहनमतिधीरं फणिबलवीरं हतपरवीरं तरलतरम् ॥
वल्लभ-व्रजरमणं वारिजवदनं जलधरशमनं शैलधरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥६॥
जलधरद्युतिअंगं ललितत्रिभंगं बहुकृतिरंगं रसिकवरम् ।
गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढनरम् ॥
वल्लभ-व्रजचन्द्रं सुभगसुच्छन्दं परमानन्दं भ्रान्तिहरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥७॥
वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलधरम् ।
कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं घातिकयमनं मृदुलतरम् ॥
वल्लभ-दुःखहरणं निर्मलचरणं अशरणशरणं मुक्तिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सब सुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्म परम् ॥८॥

श्रीकृष्ण-कीर्तन

जय माधव मदन मुरारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ।
जय केशव कलिमलहारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
सुन्दर कुण्डल मुकुट विशाला, गल सोहै वैजन्ती माला ।
या छवि की बलिहारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
कबहुँ लूट दधि माखन खायो, कबहूँ मधुबन रास रचायो ।
निर्तत विपिन विहारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
ग्वाल बाल सँग धेनु चराई, बन-बन भ्रमत फिरे यदुराई ।
काँधे कामर कारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥



भैरवलाल बथवाल

एक दिन मान इन्द्र को मारयो, नख ऊपर गोवर्धन धारयो ।
नाम परयो गिरिधारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
चुरा चुरा नवनीत जो खायो, ब्रज-वनितन से नाम धरायो ।
माखनचोर मुरारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
दुर्योधन को भोग न पायो, रूखो शाक विदुर घर खायो ।
ऐसे प्रेम पुजारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
करुणा कर द्रौपदी पुकारी, पट में लिपट गये बनवारी ।
निरख रही गान्धारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
अर्जुन को रथ हाँकन हारे, गीता के उपदेश तुम्हारे ।
चक्र सुदर्शनधारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
ब्रजवल्लभ क्यों सुरत बिसारी, भारत जनता बहुत दुखारी ।
सुध लेवो नाथ हमारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
भक्त भक्त सब ही तुम तारे, भक्तिहीन हम ठाढ़े द्वारे ।
लीजो खबर हमारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
तुम बिन और कहाँ मैं जाऊँ, औरन से कहते सकुचाऊँ ।
सुनो दीन दुःखहारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥
बार-बार मैं विनती करता, भक्तों के तुम ही दुःखहर्ता ।
मैं हूँ शरण तुम्हारी, राधेश्याम श्यामा-श्याम ॥

श्रीराम-कीर्तन

जय रघुपति जन-मनहारी, सीताराम सीताराम ।
जय दशरथ अजि विहारी, सीताराम सीताराम ॥ १ ॥

श्याम शरीर मुकुट सिर सोहै, पीत वसन लखि मुनिवर मोहै।
जय जय अवध विहारी, सीताराम सीताराम ॥ २ ॥
भूमि भार के टारन हारे, कौसल्या के परम दुलारे।
धनुष बाण कर धारी, सीताराम सीताराम ॥ ३ ॥
विश्वामित्र यज्ञ रखवारे, गौतम तिय के तारन हारे।
निज जन के सुखकारी, सीताराम सीताराम ॥ ४ ॥
तोड़्यो धनुष शम्भु को भारी, सिय जयमाल राम उर डारी।
सुर नर मुनि हितकारी, सीताराम सीताराम ॥ ५ ॥
केवट सों निज चरण धुवाये, भगत गीध निज धाम पठाये।
करुणासिन्धु खरारी, सीताराम सीताराम ॥ ६ ॥
बैर भीलनी के अति भाये, परम प्रेम से प्रभु ने पाये।
ऐसे प्रेम पुजारी, सीताराम सीताराम ॥ ७ ॥
दीन सुकण्ठ मित्र प्रभु कीन्हा, बालि मारि धाम निज दीन्हा।
भक्तन के भय हारी, सीताराम सीताराम ॥ ८ ॥
भक्त विभीषण शरण में आये, रावण वधि लंकेश बनाये।
दीनबन्धु असुरारी, सीताराम सीताराम ॥ ९ ॥
राज सिंहासन शोभित कीन्हो, पुरवासिन्ह कहँ अति सुख दीन्हो
जय साकेत विहारी, सीताराम सीताराम ॥ १० ॥
अब करुणामय करुणा कीजे, दीन जनन को यह वर दीजे।
पावें भक्ति तुम्हारी, सीताराम सीताराम ॥ ११ ॥
जो जन प्रभु के यह गुण गावें, उनके मानस में हरि आवें।
होत हृदय सुख भारी, सीताराम सीताराम ॥ १२ ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः

शरणं तरुणेन्दुशेखरं शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥

जीवनका उद्देश्य

संसारके सभी जीव चाहते हैं कि हमको शाश्वत परमानन्द—आत्यन्तिक सुख प्राप्त हो। इसका मूल कारण यह है कि सब पदार्थ अपने कारणकी ओर ही अग्रसर होते हैं। जैसे कोई पृथ्वी-के एक ढेलेको ऊपर आकाशमें फेंकता है तो जबतक वेग है तबतक वह ऊपर जाता है, वेग खतम होनेपर अपने कारण पृथ्वीमें ही जा मिलता है, उसी प्रकार जल भी अपने कारण समुद्रकी ओर दौड़ता जाता है, तथा दीप-शिखा अपने कारण सूर्यसे ही मिलना चाहती है। इसी प्रकार जीव भी अपने कारण परमानन्दका ही अहर्निश अन्वेषण करता है। क्योंकि महान् परमानन्द नित्य सुखस्वरूप-सिन्धुका एक बिन्दु ही तो जीव है—

"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते॥ आनन्देन जातानि जीवन्ति॥ आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥" (तै० ६।३) संसारके सभी पदार्थ अल्प, अनित्य एवं मर्त्य होनेसे दुःखरूप हैं। जो नित्य, पूर्ण है वही सुख है—"यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति" (छा० ७।२३।१)।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि यदि जीव अपने कारण परमानन्दको चाहता है तो विषयकी ओर इसकी प्रवृत्ति क्यों होती है ? इसका उत्तर यह है कि परमानन्दस्वरूप सुखका यथार्थ ज्ञान जीवको नहीं है, अतः विषयमें ही परमानन्दका अन्वेषण करता है, किन्तु अहर्निश अथक परिश्रम करनेपर भी इसको वह परमानन्द नहीं मिलता। विषयोंमें जो सुख प्रतीत होता है, वह भी अनित्य क्षणिक होनेसे दुःखरूप ही है। अज्ञानसे विषयोंमें सुख समझकर ज्यों-ज्यों विषयोंका अधिक संग्रह करता है त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझनमें ही पड़ता है; क्योंकि विषयोंमें तो परमानन्द है ही नहीं। भगवान् स्वयं कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (५। २२)

इस परमानन्द-प्राप्तिके लिए तो उसी अनन्त असीम निरवधि सुखस्वरूप सत्ताकी ही शरण लेनी पड़ती है। लौकिक उपायसे इसकी प्राप्ति किसीको न हुई है और न हो ही सकती है।

सुखाय कर्माणि करोति लोको
न तैः सुखं वान्यदुपारमं वा।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं
यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः॥
(भागवत ३। ५। २)

श्रीविदुरजीने महर्षि मैत्रेयजीसे पूछा कि हे भगवन्! सकल प्राणी सुखके लिये कर्म करते हैं, किन्तु उनसे सुख-प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति तो होती नहीं है, उलटे उन कर्मोंसे दुःख ही होता है, अतः दुःखमय संसारमें हमको कौन-सा उपाय करना चाहिये सो कृपया कहें। इसी अभिप्रायको मनमें रखकर प्रह्लाद भगवान् नृसिंहसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥(७।९।१९)

"हे नृसिंह देव! हे विभो! दुःखोंसे संतप्त प्राणीके लिए इस लोकमें जो दुःख-निवृत्तिका उपाय कहा गया है, वह उपाय आपसे उपेक्षित होनेपर क्षणमात्रको ही होता है। जैसे माता-पिता बालकके रक्षक हैं तथापि वे सर्वथा रक्षक नहीं हैं, उनके द्वारा रक्षा की जानेपर भी बालकको नाना प्रकारके दुःख एवं मृत्यु होती देखी जाती है। इसी प्रकार औषध भी रोगीका रक्षक कहा गया है किन्तु औषध सेवन करनेपर भी मृत्यु होती देखी जाती है तथा नौका भी समुद्रमें डूबनेवालेकी रक्षक कही गयी है तथापि नौकाके साथ भी प्राणी समुद्रमें डूबते देखे जाते हैं। अतः लौकिक उपाय जीवके रक्षक होते हुए भी वास्तविक रक्षक आप ही हैं।"

भाव यह कि आत्यन्तिक सुख-प्राप्तिके लिए लौकिक उपाय छोड़कर अनन्त पूर्ण निरवधि सुख स्वरूप भूतभावन शिवके ही शरणमें जाना चाहिये।

एक बार हिरण्यकशिपुने पुत्र प्रह्लादको अपनी गोदमें बैठाकर पूछा—वत्स! तुम्हें क्या अच्छा लगता है सो बतलाओ। प्रह्लाद बोले—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥ (७।५।५)

हे दैत्योंमें श्रेष्ठ पिताजी! अहंता-ममता (मैं और मेरा) इस असत् आग्रहके कारण सर्वदा अत्यन्त उद्विग्न बुद्धिवाले

प्राणियोंके लिए अन्धकूपके समान मोहकारक एवं अपने आत्म-पतनके हेतुभूत गृहको त्यागकर वनमें जाकर श्रीहरिका आश्रय लेना—यही सार है।

भगवान् श्री अनन्त राजा चित्रकेतुसे कहते हैं कि—

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम्।
आत्मानं यो न बुद्ध्येत न क्वचिच्छमआप्नुयात् ॥(६।१६।५८)

हे राजन्! इस लोकमें जो पुरुष ज्ञान एवं विज्ञानकी प्राप्तिके हेतुभूत मानव जन्मको पाकर भी सबके आत्मस्वरूप परमेश्वरको नहीं जानता, उसको कहीं भी शान्ति नहीं मिलती।

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं कि संसारके तत्त्वकी आलोचना करनेवाले पुरुष प्रायः स्वयं अपना उद्धार कर लेते हैं। क्योंकि सब प्राणियोंका आत्मा ही गुरु है, उनमें भी मनुष्यका आत्मा तो विशेष रूपसे गुरु है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष और अनुमानसे अपने श्रेयका निर्णय कर लेता है।

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥
आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥
(११।७।१९-२०)

इसी प्रसंगमें मानव जन्मकी सार्थकता बतलाते हुए अवधूत एवं राजर्षि यदुके इतिहासका वर्णन है। उसमें अवधूत यदुसे कहते हैं कि—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥(११।९।२९)

मनुष्य-देह अनित्य होनेपर भी परम पुरुषार्थका साधन है। बहुत जन्मोंके बाद यह दुर्लभ शरीर प्राप्त होता है, अतः धीर—बुद्धिमान्को चाहिये कि मृत्यु प्राप्त होनेके पहिले ही अपने निःश्रेयस अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करे; क्योंकि विषय-सुख सभी योनियोंमें मिलते हैं, अतः विषय-भोगमें अपना जीवन नष्ट न करे।

मनुष्य-शरीरकी सार्थकता वर्णन करते हुए भगवान् स्वयं कहते हैं—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥(११।२९।२२)॥

यही बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता एवं विचारशीलोंकी विचार-शीलता है कि असत् नाशवान् मानव शरीरसे अजर-अमर अमृत-स्वरूप मुझ परमात्माको प्राप्त कर ले।

इस कथनका भाव यह कि मनुष्य-जीवनका लक्ष्य आत्यन्तिक सुख अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करना ही है, क्योंकि स्वभावतः सबकी यही इच्छा देखी जाती है। परन्तु यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह परमानन्दकी प्राप्ति किसी भी लौकिक उपायसे नहीं हो सकती। अतः अनन्त निर्बाध निरवधि परमानन्दस्वरूप परमात्माके ही सर्वभावसे शरणमें जाना चाहिये।

यह जीव अनादिकालसे अनादि अविद्याद्वारा अनेक अनर्थ-परिप्लुत याने दीनता-दरिद्रता, जन्म-मरण आदिकी चक्कीमें पिसता हुआ संसारमें भटक रहा है। इससे छूटनेका एकमात्र उपाय भगवत्प्राप्ति ही है। भगवत्प्राप्तिसे जीवका समस्त अमंगल नष्ट हो जाता है।

यह भगवत्प्राप्ति ही आत्यन्तिक परमानन्दकी प्राप्ति है, इसीका नाम मोक्ष है; यही परमपद एवं विष्णुपदसे कहा गया है। "तद्विष्णोः परमं पदम्" (कठ०) यही जीवकी परागति है, मनुष्य-जीवनका परम पुरुषार्थ भी यही है। धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों परम पुरुषार्थके साधन माने गये हैं।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥
(भा० १। २। ९-१०)

धर्म अपवर्ग—मोक्षका साधन है धनका नहीं अर्थात् धर्मसे धन भी होता है किन्तु धर्मसे धन-प्राप्ति गौण है, धर्मका मुख्य फल मोक्ष ही है। इसी प्रकार अर्थ—धनका मुख्य फल धर्म है, काम—भोग फल गौण है। एवं कामका मुख्य फल जीवन धारण करना ही है, इन्द्रिय-तृप्ति करना गौण अर्थात् निकृष्ट है। जितनेसे जीवन चल सके उतना ही काम सेवन करना श्रेयस्कर होता है, अधिक सेवन हानिकारक होता है और जीवन धारण करनेका फल भी तत्त्वज्ञान है, केवल स्वर्गादि-प्राप्त्यर्थ कर्म करना नहीं है। वह तत्त्व ही ब्रह्म है, वही परमात्मा है, उसीका नाम भगवान् है—यह तत्त्ववित् कहते हैं।

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ (१।२।११)

ऊपर कहा गया है कि मनुष्य-जीवनका परमलक्ष्य भगवत्-प्राप्ति है। यह मनुष्य-जीवन सफल तभी माना जाता है जबकि इस शरीरमें ही उस परम तत्त्वका साक्षात् हो। श्रुति स्वयं कहती है—"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।"

यदि इस शरीरमें ही तत्त्वको जान लिया गया तब तो ठीक है और यदि इस शरीरमें नहीं जाना तो उसे महान्—दीर्घ अनन्त कालतक जन्म-मरण आदिकी परम्परा बनी रहती है अर्थात् संसारसे छुटकारा नहीं होता। इन सब प्रमाणोंसे यही निश्चय होता है कि मनुष्य-जीवनका परम लक्ष्य परमानन्दकी प्राप्ति करना ही है विषय-भोगमें जीवन नष्ट करना नहीं।

लक्ष्यका स्वरूप

लोकमें यह प्रसिद्ध है कि विना जाने किसीका कोई आदर नहीं करता। अतः भक्तको भजनीय परमानन्द भगवान्के स्वरूप-का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिये। पहिले कहा गया है कि—अद्वय अनन्त ज्ञानस्वरूप ब्रह्मको ही परमात्मा और भगवान् भी ज्ञानी लोग कहते हैं। भगवान्के दो स्वरूप हैं—"मूर्तं चामूर्तञ्च" मूर्त और अमूर्त। इनमें अमूर्त स्वरूपका तो ज्ञान होता है। वह ज्ञान प्रमाण और प्रमेयके अधीन होता है—"लक्षणप्रमाणा-भ्यां वस्तुसिद्धिः।" जैसे प्रत्यक्ष ज्ञानमें चक्षु आदि इन्द्रियाँ प्रमाण हैं, घटादि प्रमेय हैं। घटसे चक्षुका सन्निकर्ष होनेपर पुरुषकी इच्छाके विना भी घटका प्रत्यक्ष होता है। 'चतुर्थ्यां चन्द्रो न द्रष्टव्यः' चतुर्थीके चन्द्रमाको देखनेका निषेध है। दिनमें मनुष्य निश्चय करता है कि आज मैं चन्द्रमाको नहीं देखूंगा, तथापि जिस किसी कारण चक्षु और चन्द्रमा—प्रमाण और प्रमेयका सन्निकर्ष होनेपर चन्द्रमाका प्रत्यक्ष हो ही जाता है। इसी प्रकार ज्ञान प्रमाण और प्रमेयके अधीन होता है। भगवान् श्री शंकराचार्यजी कहते हैं कि—

"यद्यपि ध्यानं—चिन्तनं मानसं, तथापि पुरुषेण कर्तुमकर्तुमन्यथा वा कर्तुं शक्यं पुरुषतन्त्रत्वात्। ज्ञानं तु प्रमाणजन्यम्, प्रमाणञ्च यथावस्तुविषयम्, अतो कर्तुमकर्तु-

अन्यथा वा कर्तुमशक्यं केवलवस्तुतन्त्रत्वात् ।" अमूर्तस्वरूपका वर्णन श्रुति करती है—

१ 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' २ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ३ 'स्वप्रभः स्वयंप्रकाशः' ४ 'अदृष्टं द्रष्टृश्रुतं श्रोतृ' ५ 'न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येत्' ६ 'द्वैतवर्जितः, एकमेवाद्वितीयम्'—

१. वह पुरुष–परमात्मा असंग है। २. सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्तस्वरूप है अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप है। ३. तथा वह परमात्मा स्वयंप्रकाशरूप है, संसारके सभी पदार्थ परप्रकाश्य होते हैं किन्तु परमात्माके प्रकाशक कोई अन्य प्रकाश नहीं हैं, वह सबका प्रकाशक है उसका प्रकाशक कोई नहीं है, अतः स्वयंप्रकाशरूप है। "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" यह श्रुति उसको परम प्रकाशक कह रही है। ४. ऊपरकी चौथी श्रुतिमें याज्ञवल्क्य गार्गीसे कहते हैं कि हे गार्गि ! वह अक्षर अदृष्ट होनेसे दृष्टिका विषय नहीं है किन्तु सबका द्रष्टा है, एवं श्रोत्रका विषय नहीं है किन्तु स्वयं श्रुतिस्वरूप होनेसे 'श्रोता' है। तथा मनका विषय नहीं होनेसे उसका मनन नहीं होता किन्तु स्वयं मति (विज्ञान) स्वरूप है। ५. तथा दृष्टिके द्रष्टाको नहीं देख सकते एवं श्रुतिके श्रोताको नहीं देख सकते इत्यादि। ६. तथा वह एक है अर्थात् स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदोंसे शून्य अद्वितीय है। "यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि" (मु० २। २। ७)। वह सर्वज्ञ और सर्ववित् है अर्थात् सामान्यरूपसे सब प्राणियोंको जानता है तथा विशेषरूपसे भी प्रत्येक प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञाता है। उसकी यह महिमा लोकमें प्रसिद्ध है।

"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः, एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा-

पृथिव्यौ विधृतौ तिष्ठतः—इत्यादि (बृ० ३।८।९) जिसके शासनमें सूर्य-चन्द्रमा अहर्निश अलातचक्रके समान भ्रमण करते रहते हैं। जिसके शासनमें द्यौ और पृथिवी स्थित है। नदियाँ, समुद्र अपने-अपने मार्गका उल्लंघन नहीं करते। जिसके शासनको स्थावर, जंगम, ऋतु, अयन, अब्द, कर्ता, कर्म और काल भी अतिक्रमण नहीं करते हैं।

उपरोक्त अमूर्त परमात्मा ही समय-समयपर कृपा करके धर्मकी स्थापना एवं दुष्टोंका संहार और अपने भक्तोंके रक्षार्थ विविध रूपोंसे अवतरित होता है।

किंवदन्ती है कि—

एक बार बादशाह अकबरने हास्यमें बीरबलसे पूछा कि क्या तुम्हारे ईश्वरके पास और कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसको अपने भक्तोंकी रक्षा करनेको भेज सके, यदि कोई है तो स्वयं क्यों अवतार लेता है ? इसका उत्तर देनेके लिये बीरबलने कुछ समय माँगा। अपने घर आकर एक कारीगरको बुलाकर हुबहू शाहजादाकी शकलका एक मोमका पुतला बनानेको कहा। जब पुतला तैयार हो गया, तब बादशाहको यमुनाकी सैर करनेकी तयारी करायी। नाव सजायी गयी। बादशाहके साथ बड़े-बड़े अमीर-उमराव एवं मुसाहेब, नौकर-चाकर भी उस नावमें सैर करने चल पड़े, सब लोग यथास्थान बैठ गये। बीरबल उस मोमके नकली शाहजादाको वस्त्रादि अलंकारोंसे अलंकृत कराके अपनी गोदमें लिए हुए बादशाहके बगलमें जा बैठे। बादशाहसहित सभी दर्शकोंको मालूम हुआ कि बीरबल शाहजादाको अपनी गोदमें लिए बैठा है। नाव चल पड़ी। जब नाव यमुनाकी बीच धारामें पहुँची तब बीरबलने उस नकली शाहजादाको यमुनामें डालकर बड़े जोरसे शोर मचाया कि शाहजादा यमुनामें गिर पड़ा। बच्चेको यमुनामें गिरा देखकर अकबरसे

नहीं रहा गया, अत्यन्त शीघ्रतासे उस बच्चेको बचानेके लिए धारामें कूद पड़ा। पीछेसे कई लोग कूदे। बच्चा निकाला गया। जलसे बाहर आनेपर मालूम हुआ कि यह शाहजादा नहीं है बल्कि मोमका बना नकली शाहजादा है। सब लोग इस रहस्यको न जाननेसे चकित-से रहे। अकबरने बीरबलसे कहा—'मेरे साथ ऐसा हास्य क्यों किया गया?' बीरबलने कहा—'जहाँपनाह! यदि मैंने एक सेरका हास्य किया तो आपने सौ सेरका हास्य किया!' अकबर—'कैसे?' बीरबलने कहा—'सामने सैकड़ों नौकरोंके रहते आप स्वयं धारामें क्यों कूद पड़े?' अकबर बोले—'बीरबल! बच्चेका प्रेम ऐसा प्रबल होता है कि मैंने सोचा—जबतक मैं किसीको हुकुम दूँ और वह कूदे, तबतक तो बच्चा मर जायगा, बच्चेके प्रेममें शीघ्रतासे मैं कूद पड़ा।' बीरबलने कहा—'हुजूर! इसी प्रकार हमारा ईश्वर सबके रहते दूसरेको आज्ञा न देकर भक्तके प्रेमसे स्वयं अवतार लेकर आ जाता है।'

तात्पर्य यह कि भगवान् बड़े दयालु हैं, भक्तवत्सल, अकारण करुण हैं, भक्त जब भी प्रेमसे दीन होकर पुकारता है तब वे प्रकट हो जाते हैं। भक्त अपनी इच्छा, श्रद्धा और हठात्कारके द्वारा जिस रूपका ध्यान करता है वही स्वरूप उसके सामने प्रकट हो जाता है एवं उसकी रक्षा करता है। इसीलिए तो कुछ महात्माओंका कहना है कि पहिले भक्त भगवान्‌को बनाता है। भक्तसे बने भगवान् भक्तकी रक्षा करते हैं।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥ (३।९।११)

भक्त कहता है—हे नाथ! हे सर्वगुणसम्पन्न! आप सच्चे भक्तियोगसे शोधित शुद्ध हृदयमें ही विराजते हैं। श्रुति ही आपका मार्ग है। भक्तलोग श्रुतिसे कथित जिन-जिन रूपोंको अपने मनमें ध्यान करते हैं उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें आप उनके समक्ष प्रकट हो जाते हैं।

ऊपर कहा गया कि जीवनका परमलक्ष्य भगवत्प्राप्ति है तथा भगवान्के मूर्तामूर्त दो रूप हैं। अमूर्त स्वरूपका ज्ञान होता है और मूर्त स्वरूप भक्तके इच्छानुरूप प्रकट होता है। दोनों रूपोंसे जीवको श्रेय प्राप्त होता है। अमूर्त ही अपनी मायाशक्तिसे मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाता है।

जो गुण रहित सगुण सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
अगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं श्रुति पुरान बुध वेदा ॥

लक्ष्य-प्राप्तिके साधन

अब प्रश्न यह उठता है—परमानन्दस्वरूप भगवत्प्राप्ति हो कैसे ? भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि—

'मोक्षसाधनसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।'

मोक्ष-प्राप्तिके साधनोंमें भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनसे कहते हैं—"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥" इसपर अर्जुनको संदेह हुआ कि भक्ति यदि श्रेष्ठ है तो ज्ञान क्या निकृष्ट है ? भगवान्ने तो पहले ही कह दिया था कि "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" अर्थात् ज्ञानी तो हमारा आत्मा ही है। किन्तु ज्ञान-प्राप्तिके विषयमें कहते हैं कि—क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्" ज्ञान-प्राप्तिमें क्लेश अधिक होता है। दूसरी बात, ज्ञानका अधिकारी कोई विरला होता है और भक्तिमें स्त्री-शूद्रादि सबको अधिकार

है। भक्ति दृढ़ होनेपर शुद्धान्तःकरणमें ज्ञानद्वारा परमानन्द-स्वरूप भगवान्‌की प्राप्ति हो ही जाती है। जिसके अनेक जन्मोंके सुकृत उदय होते हैं उसीके भगवान्‌में रति तथा भक्ति उत्पन्न होती है। गीता ७। २८ में भगवान् कहते हैं कि—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

अब यह संदेह उठना स्वाभाविक है कि आखिर भक्तिका स्वरूप क्या है ? तो सुनो—

भज् धातु सेवा अर्थमें है, क्तिन् प्रत्यय करनेपर भक्ति शब्द सिद्ध होता है। भक्तिकी परिभाषा लोग भिन्न-भिन्न रूपमें करते हैं। "प्रेमार्द्रबुद्धिः भक्तिः" प्रेमसे आर्द्र बुद्धिका नाम भक्ति है। कोई कहते हैं—"मानप्रदर्शनं भक्तिः" मान-प्रदर्शनका नाम भक्ति है। अथवा "परलोकमतित्वेनोपास्यबुद्धिः" परलोकबुद्धिसे उपास्य देवमें मन लगानेका नाम भी भक्ति है। तथा "जड-अनृत-अहंकारादिरहिता सत्यज्ञाना-नन्दाकारा प्रत्यक्चेतोवृत्तिः" जड-अनृत-अहंकारादिरहित, सत्य-ज्ञान-आनन्दाकार प्रत्यगात्मामें चित्तवृत्तिको स्थापन करनेका नाम भक्ति है। अथवा "माहात्म्यज्ञानपूर्वकस्नेहाख्यान्तः-करणवृत्तिविशेषो भक्तिः"। इष्टदेवके माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक स्नेह—प्रेमयुक्त अन्तःकरणकी वृत्तिविशेषका नाम है भक्ति।

भगवान् कपिलदेवजी अपनी माता देवहूतिसे कहते हैं कि—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये॥
(भा० ३। २५। १९)

सर्वात्मरूप भगवान्‌में की हुई भक्तिके समान ब्रह्म-प्राप्तिका दूसरा सुखकर मार्ग नहीं है। आगे कहते हैं कि—

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥
(३ ।२५ । ३२-३३)

"गुणा विषयाः शब्दादयो लिङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्तेषाम्, अनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तद्विहितमानुश्रविकं तदेव कर्म येषां तेषां सत्त्वे हरौ एव या स्वाभाविकी वृत्तिः सा भक्तिः"। अर्थात् विषय—शब्दादिका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंकी वेदविहित कर्म करनेमें स्वाभाविकी याने विना यत्नके सत्त्वस्वरूप भगवान्में अर्पण-बुद्धि से जो प्रवृत्ति है उसका नाम भक्ति है। अर्थात् निष्काम वर्णाश्रमविहित कर्म ही का नाम भक्ति है। यह भागवती भक्ति सिद्धि-मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है। जठराग्नि जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचा डालता है, उसी प्रकार यह भक्ति कोश याने लिङ्ग शरीरको भस्म कर देती है।

आगे कहते हैं—भक्ति बहुत प्रकारकी होती है—"भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।" प्रह्लादजी कहते हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
(७ । ५ । २३)

तुलसीदासजी भक्तिका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भक्ति मम गुण गण, करइ कपट तजि गान ॥
मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पञ्चम भजन सो वेद प्रकाशा ॥
छठ दम शील विरति बहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥

कोई आचार्य कहते हैं—

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यसीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः॥

अनुकूलका संकल्प एवं प्रतिकूलका त्याग, 'भगवान् अवश्य रक्षा करेंगे'—यह दृढ़ विश्वास तथा रक्षक रूपसे भगवान्‌को वरण करना, आत्म-समर्पण और भगवान्‌से दीनता—यह छः प्रकारकी शरणागति भक्ति है।

कोई कहते हैं कि—"तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा"—साधनावस्थामें भगवान्‌का ही मैं हूँ। अभ्यास बढ़नेपर भगवान् मेरे ही हैं। भक्ति परिपक्व होनेपर वही मैं हूँ।

भगवान् स्वयं भी कहते हैं—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
(गीता १८। ५५)

भक्त भक्तिसे मेरे स्वरूपको यथार्थ जानता है तथा तत्त्वतः जानकर मुझमें प्रवेश कर जाता है। एवं "मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥" हे पार्थ! मेरा आश्रय ग्रहण करके जो कोई भी पापयोनि, स्त्री, वैश्य, शूद्रादि हों वे सबके सब परागतिको प्राप्त कर लेते हैं।

काशीरहस्यमें एक कथा है कि कुष्माण्ड ऋषिके पुत्रका नाम मण्डप था, वह संग-दोषसे बाल्यकालहीसे वेदाभ्यास करनेपर भी काशीमें रहकर पापका आचरण करता था। माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बियों सबने ही उसको मना किया, परन्तु उसने किसीकी भी एक न सुनी। उसकी यह सब बुरी आदतें अवस्थाके साथ-साथ बढ़ती ही चली गईं। एक बार राजाके महलमें अपने दो-तीन साथियोंके साथ घुस गया, और सफलतापूर्वक चोरी कर सुरक्षित धन लेकर बाहर निकल आया। फिर वेश्याके घरमें धन रखकर उसीके साथ दिन-रात आहार-विहारमें प्रवृत्त हो गया। एक दिन उसे प्यास लगी तो मञ्चके नीचे रक्खे हुए ताम्रके पात्रको पानीका भरा पात्र समझकर उसे पी गया। वेश्यासे पूछनेपर उसे पता लगा कि वहाँ तो सब शराब रक्खी हुई थी। उसी समय उसके दोनों साथी भी आ गये। वेश्याकी बात सुनकर उसके साथियोंने उसे धिक्कारा कि तुम ब्राह्मण होकर शराब पीते हो एवं वेश्यागमन करते हो, अब क्या करोगे। तुम्हारे पापोंको हम-लोग छिपाये हैं। इतना कहकर उससे धन-सुवर्ण माँगा। न देनेपर उसे खूब पीटा। उन्हें देनेको मण्डपने वेश्यासे धन माँगा, तब तो वेश्याने भी उसे खूब फटकारा। अब तो बेचारे मण्डपको वेश्याके घरसे चले जानेके सिवा और कोई चारा ही नहीं था। ज्यों ही वह घर पहुँचा तो पीछेसे वे दोनों साथी भी उसके माता-पिताके पास आये, तथा उनसे सारी कथा अपने पुत्रके सम्बन्धमें कह सुनाई।

कुष्माण्ड ऋषिने कहा कि ऐसे दुर्वृत्त व्यक्तिको अवश्य राजाके पास ले जाकर दण्ड दिलवाना ही उचित है। इसपर वे दोनों डरे कि कहीं राजाके पास जाकर साक्षी बनकर राज्यकी चोरी-का सारा भेद न दे दे, क्योंकि चोरी तो तीनोंने मिलकर की थी, उन दोनोंने कुष्माण्ड ऋषिको राजाके पास जानेसे मना कर

दिया, इसपर कुष्माण्डने मण्डपको तिरस्कारके साथ घरसे निकाल दिया और कहा—इस बुरे कर्मका प्रायश्चित्त कर लेनेपर ही मेरे साथ सम्बन्ध होगा, अन्यथा तुम्हारा उद्धार होना शक्य नहीं है। पिताके इस प्रकार कहकर छोड़ देनेपर दोनों साथियोंने उसको दूर ले जाकर खूब पीटा, जब वह मूर्च्छित हो गया तो मरणासन्न समझकर अस्सी-सङ्गमके समीप छोड़ दिया। वहाँ रातभर पड़ा रहा। प्रातःकाल मूर्च्छासे उठा तो देखा कि सामने ही पञ्चक्रोशात्मक शिवलिङ्गका माहात्म्य जाननेवाले भक्तलोग प्रदक्षिणा कर रहे हैं। उन्हें देखकर वह भी उनके लाथ हो गया। उस दिन सभी यात्री कर्दमेश्वरकी सन्निधिमें टिके। वहाँ उसने भी सत्सङ्गसे वेद-शास्त्रोंके सारका पान किया और रात्रिमें भगवान् शंकरके सामने जागरण किया। सभीने उसकी भक्तिको देखकर साधुवाद (धन्यवाद) देकर प्रशंसा की। अब वह कुष्माण्ड ऋषिका पुत्र भक्त बन गया। उसका भक्त बनना उचित भी था। उनमें कोई भी उसके पूर्व वृत्तान्तको नहीं जानता था।

सत्सङ्गतिका ऐसा विलक्षण प्रभाव हुआ कि पहिले तो वह बाहरसे साधु पुरुष दिव्य शरीरवाला था ही, फिर उसका अन्तःकरण भी उन यात्रियोंके साधुवादसे निर्मल हो गया और उसे विश्वास हो गया कि सन्मार्गसे योगक्षेम तो चलता ही है, प्राणीका उद्धार भी सत्सङ्गसे हो जाता है। यह विचार कर उसने एकमात्र निश्चय किया कि शिवभक्त सन्त पुरुषोंकी सेवा करके उनको प्रसन्न करना एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त करना और देहकी कोई चिन्ता नहीं होने देना—यही भक्तिका सुन्दर मार्ग है, ऐसी ही जीवनचर्या बनानेका प्रयत्न किया जाय।

दूसरे दिन सबके साथ भीमचण्डीमें मण्डपने विश्राम किया और भक्तोंके द्वारा सुन्दर भोजन आदिसे सत्कृत होकर रात्रिमें देवीजीके सामने सभीने भक्ति-भावपूर्वक जागरण कर क्षेत्र-

माहात्म्य सुना और सुन्दर शरीर-वेषधारी मण्डपने भी खूब प्रेमसे नृत्य किया। तीसरे दिन वह विशेष संयमसे चलते-चलते 'महादेव वासुदेव शिव' आदिका कीर्तन करते हुए और क्षेत्रके दक्षिण भागसे परिक्रमण करते हुए देहली विनायक पहुँचा और सब कुछ छोड़कर केवल भगवन्नाम-परायण हो गया। उसे अपने पूर्वकृत कुकृत्योंके लिये बारम्बार पश्चात्ताप होने लगा, और केवल भगवान् भूतभावन शंकर तथा सर्वतापशमनी भगवती काशीको ही एकमात्र शरण समझ उनसे उद्धारकी पश्चात्तापपूर्वक प्रार्थना करने लगा। रामेश्वरमें आते-आते उसकी भक्तिप्रवणताका भाव देखते ही बनता था। अब तो वह रामेश्वर और सोमनाथका पूजन करके बिना कुछ खाये-पीये ही नृत्य-गीतादि करने लगा। हर क्षण शिव-विष्णु एवं काशीके ध्यान-परायण हो गया। और पूर्वके पापोंको बार-बार स्मरण करता हुआ उनसे उद्धार होनेकी प्रार्थना करने लगा।

निर्द्वन्द्वः समदृक् शान्तो बभूव गतसाध्वसः।
ब्राह्मणेन मया स्तैन्यं सुवर्णस्य कृतं रहः॥
वञ्चितश्च पिता मान्यो माता साध्वी च वञ्चिता।
पापेनोपार्जितं वित्तं वेश्यावेश्मनि तिष्ठति॥
आहारो मैथुनं निद्रा मिथ्यावादादयोऽपि वा।
जाता मम वराकस्य कथं पापपरिक्षयः॥

इस प्रकार अनुतापसे सन्तप्त होता हुआ मण्डप मण्ड (देहाभिमान) से रहित हो गया—

अनुतापैः सुसन्तप्तः मण्डपो मण्डवर्जितः।

कभी अपने पापोंका स्मरण करके रोता था और कभी क्षेत्र-प्रदक्षिणाके माहात्म्यको स्मरण करके हंसता था।

क्वचिद्रुदति संस्मृत्य संस्मृत्य स्वाघसंचयम्।
क्वचिद्धसति क्षेत्रस्य प्रदक्षिणकृदित्यहम्॥
काशी काशीति काशीति शिव शंकर केशव।
पाहि मां पतितं दीनं गुरु-देवापराधिनम्॥

मण्डपने सबके साथ रामेश्वरसे चलकर वृषध्वजमें जाकर विधि-पूर्वक कपिलाके जलसे स्नान कर देवगणकी पूजा की, फिर विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णाके दर्शन किये। उसने अपना वृत्त—चरित्र सुनाकर उद्धारके लिए सभी यात्री सदस्योंसे उपाय पूछा। सबने उसे निष्पाप बताते हुए भगवान्के क्षेत्रकी प्रदक्षिणाद्वारा सब ठीक किया गया है, ऐसे कहकर आश्वासन दिया, और भगवान् विश्वनाथका स्मरण करते हुए अपने पिताके दर्शन करने और उन्हें बुलानेके लिये कहा। मण्डपने जैसे ही घरके दरवाजे-पर 'शिव शिव महादेव महादेव' की आवाज लगाई तो उसके पिताने उसकी माताको भेजा। माताने अपने पुत्रको देखकर 'विना प्रायश्चित्त किये ही कैसे तू आ गया?' यह पूछा तो मण्डपने कहा कि, 'आप दोनोंको सदस्यगण बुलाते हैं, आप चलिये।' कुष्माण्ड ऋषिको विश्वास नहीं हुआ, फिर भी वह उसके साथ चल पड़ा। मुक्ति-मण्डपमें पहुँचनेपर धर्माधर्मके विचारकोंने कहा—'तुम्हारा पुत्र शुद्ध हो गया है।' कुष्माण्डने पूछा—'किस प्रायश्चित्तसे मेरा पुत्र शुद्ध हुआ है और मुझे प्रतीति कैसे हो कि यह शुद्ध हुआ है।' इसपर सदस्योंने कहा—'इसमें प्रमाण विष्णु भगवान् ही हैं।'—इतना कह वे सब स्तुति करने लगे। स्तुति करनेसे विष्णु, ढुण्ढिराज, दण्डपाणि और काल-भैरवने प्रकट होकर एक स्वरसे 'पञ्चक्रोश प्रदक्षिणा करनेवालोंके सब पाप शमन हो जाते हैं' यह कहा। भैरवजीने विशालाक्षी नामकी ब्राह्मणीके स्वेच्छामय जीवनकी कथा कही, जिसने स्वेच्छा-चारसे काशीमें भी आकर पाप किया। परन्तु किसी व्याजसे

पञ्चक्रोश प्रदक्षिणा करनेसे उसका उद्धार हो गया। यही मण्डपके उद्धारका भी उपाय है। इसपर सबने साधुवाद दिया और विदा ली। कुष्माण्ड ऋषि भी अपने पुत्र मण्डपके साथ घर आये। भाव यह कि भगवान्में भक्ति करनेसे बड़ेसे भी बड़े पापसे प्राणीका उद्धार हो जाता है।

परमानन्दस्वरूप भगवत्प्राप्तिमें पाप ही प्रतिबन्धक होता है। निर्गुण निर्विकार अखण्ड अनन्त स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, उसे स्थूल बुद्धिसे जानना शक्य नहीं होता। अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे ही जाना जा सकता है। "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मण:" "कषाये कर्मभि: पक्वे ततो ज्ञानं प्रवर्तते" पापकर्म क्षय होनेपर मनुष्यको ज्ञान उत्पन्न होता है। निष्काम कर्म करनेसे जब कषाय—दोष दूर हो जाता है तब भगवद्विषयिणी बुद्धि होती है। ऊपर कहा गया है कि भगवान्के दो रूप हैं—एक अमूर्त, दूसरा मूर्त। मूर्तका ध्यान साधककी इच्छा, श्रद्धा और हठात्कारके अधीन होता है। पाप दूर होनेपर सदिच्छा याने ईश्वर-विषयक इच्छा होती है। इसीका नाम आस्तिक्यबुद्धि है। आस्तिक्यबुद्धि होनेसे गुरु-शुश्रूषा तथा इन्द्रिय-संयम और इन्द्रियसंयमसे चित्तकी एकाग्रता होती है। श्रद्धाका अर्थ है गुरु एवं वेदान्त-वाक्यमें विश्वास। विना श्रद्धाके कोई भी सिद्धि नहीं होती है।

किंवदन्ती है कि किसीने तुलसीदासजीसे हठपूर्वक कहा—'हमको भगवान्का दर्शन करा दें।' गोस्वामीजीने कहा—'वृक्षके नीचे त्रिशूल गाड़ दो और वृक्षपर चढ़कर रामका नाम लेकर त्रिशूलपर कूद पड़ो, रामका दर्शन हो जायगा।' वह व्यक्ति त्रिशूल गाड़कर वृक्षपर चढ़ा, संदेह होनेपर वृक्षसे उतर आया। इस प्रकार कई बार चढ़ा और उतरा। कोई राजा उसे देख रहा था, उसने आकर पूछा—'तुम कौन हो, यह क्या कर रहे हो ?' उसने बताया—'तुलसीदासजीने रामके दर्शनका उपाय बताया

है, किन्तु मुझे संदेह हो जाता है इसलिये मैं नहीं कूद सका।' इतना कहकर वह व्यक्ति चला गया। राजाने सोचा, तुलसीदासजी तो मिथ्या नहीं कह सकते। ऐसा विश्वास करके राजा वृक्षपर चढ़कर भगवान् रामका नाम लेकर ज्यों ही कूदे कि भगवान्ने प्रकट होकर उनको त्रिशूलपर गिरनेसे बचा लिया। कहनेका भाव यह कि श्रद्धाके विना कोई सिद्धि नहीं होती। आज अधिकतर व्यक्तियोंमें श्रद्धा तथा संयमका अभाव है अतः सिद्धियाँ नहीं देख पड़ती हैं। श्रुति भी कहती है—**"यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति"** (छा० ७।२१।१) श्रद्धा और संयम हो तो आज भी भगवान् दूर नहीं हैं।

भगवान् शंकराचार्यके शिष्योंमें गौडपादाचार्यको नृसिंह भगवान्का साक्षात्कार था। गौडपादाचार्यजी जिस वनमें तप करते थे, उसमें एक भिल्लोंका राजा रहता था। एक दिन वह भिल्ल आचार्यजीके पास आकर कहने लगा—'तुम बहुत दिनसे इस वनमें शिकारके लिये पड़े हो, तुम्हारा शिकार नहीं मिला।' गौडपादाचार्य हँसकर बोले—'हाँ भाई, अबतक तो नहीं मिला।' उस भिल्ल शिकारीने कहा—'अच्छा, बताओ—तुम्हारा शिकार कैसा है ?' आचार्यजीने नृसिंह भगवान्का रूप बताया। शिकारीने पुनः पूछा—'क्या इस वनमें तुम्हारा शिकार है ?' उन्होंने कहा—'हाँ, अवश्य है।' शिकारीने कहा—'आज मैं तुम्हारा शिकार ला दूँगा। अगर न लाऊँ तो जलकर मर जाऊँगा—यह कहकर चला गया। दिनभरमें समस्त वन ढूँढ़ डाला, अथक परिश्रम करनेपर भी जब शिकार नहीं मिला और संध्या भी हो गयी, तो शिकारी इन्धन बटोरकर ज्यों ही आगमें कूदना चाहता था, त्यों ही भगवान् नृसिंहने साक्षात् प्रकट होकर उस शिकारीको जलनेसे बचा लिया। शिकारी शिकारको पकड़कर रस्सीमें बाँध-

कर पीठपर लादे हुए गौडपादाचार्यके समीप आकर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा—'लो, यही न तुम्हारा शिकार है ?' इतना कहकर एवं नृसिंहको उनके सामने रखकर चला गया। आचार्यने भगवान्की स्तुति-पूजा करनेके बाद पूछा—'भगवन्! मैं इतने दिनसे आपका स्मरण करता रहा किन्तु मुझे आपके दर्शन नहीं हुए; इस भिल्लको एक दिनमें ही कैसे दर्शन दे दिया ?' उत्तरमें भगवान्ने कहा—'तुममें इतना जोरदार अभिनिवेश (हठ) नहीं है।' भाव यह कि साधकमें भगवद्विषयक हठ भी होना चाहिये। इच्छा, श्रद्धा, संयम और हठ हो तो भगवान्के दर्शन दूर नहीं हैं।

भक्त अपनी इच्छाके अनुकूल अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त गुणगण, अनन्त सौन्दर्य, माधुर्यादिविशिष्ट भूतभावन भगवान् शिव, विष्णु, राम और कृष्णादि जिन देवताओंमें रुचि हो उनका ध्यान करे।

कपिलदेवजी अपनी माता देवहूतिसे ध्यानकी विधि वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान्का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर, दर्शनीय एवं भक्तोंके मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है।

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्॥

मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया।
परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम्॥
काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणि हृदयाम्भोजविष्टरम्।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम्॥

अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम्।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम्॥

कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ।
ध्यायेद् देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥
(भा० ३ । २८ । १३—१८)

अपने मनके अनुकूल स्वरूपका ध्यान करे। ध्यानके अभ्यास-कालमें पहिले सर्वाङ्गका ध्यान करे। सर्वाङ्ग ध्यान हुए विना एक अङ्गमें मनका स्थिर होना कठिन होता है। अतः सर्वाङ्गका ध्यान करना आवश्यक है। तदनन्तर सर्वाङ्गमें ध्यान दृढ़ होनेके लिए उनके एक-एक अङ्गका ध्यान करना चाहिये। अपनेको जैसा प्रिय हो—खड़े हुए, चलते हुए, सिंहासनपर बैठे, शय्यापर शयन किये, अनेकों प्रकारकी देखने योग्य लीलाएँ करते हुए, अपने हृदयरूप गुहामें विराजमान भगवान्का ध्यान करे।

जब भगवान्के स्वरूपमें चित्त स्थिर होने लगे, चाहे उनके सर्वाङ्गमें हो अथवा अवयवमें हो, तब मनन करनेवाला भक्त भगवान्के एक-एक अवयवमें अपने मनको स्थिर करनेका प्रयास करे।

संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥
(भा० ३ । २८ । २१)

पहिले भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान करे, जो वज्र, अङ्कुश, ध्वज और कमलके चिह्नसे युक्त है। उस चरणकमलके लाल नाखूनोंकी आभा भक्तोंके हृदयमें स्थित अज्ञानरूप घने अन्धकारको दूर करती है। उस चरणारविन्दके प्रक्षालित जलसे नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी निकली हैं, जिनके पवित्र जल मस्तकपर

धारण करनेसे शिवजीको शिवत्व प्राप्त हुआ है। जिस चरण-कमलके ध्यानसे ध्याताके बड़े-बड़े पाप-पहाड़ टूट-फूट जाते हैं, उस चरणारविन्दका ध्यान करे।

इसके बाद भवभञ्जन भगवान्की दोनों जङ्घाओंका हृदयमें ध्यान करे, जिन जङ्घाओंकी सब देवताओंकी वन्दनीया कमल-नयना महालक्ष्मीने नवीन पत्तोंके समान कोमल एवं कान्तियुक्त अपने हाथोंसे बड़े चातुर्यके साथ सेवा की है।

तदनन्तर भगवान्के ऊरुका ध्यान करे, उसके बाद कटिका ध्यान करे जिसमें विद्युत्के समान पीला पीताम्बर और उसके ऊपर सुवर्णकी करधनी सुशोभित है।

फिर नाभिस्थलका ध्यान करे जिससे ब्रह्माजीके उत्पत्ति-स्थान सर्वलोकस्वरूप कमलकी उत्पत्ति हुई है। तदनन्तर मरकतमणिके समान उत्तम दोनों स्तनोंका ध्यान करे जो स्तन स्वच्छ हारोंकी किरणोंसे गौरवर्ण प्रतीत हो रहे हैं। इसके पश्चात् वक्षःस्थलका ध्यान करे, जिसमें लक्ष्मीका निवास है एवं जो भक्तोंके मन तथा नेत्रोंको आनन्दप्रद है। फिर कण्ठका ध्यान करे जो धारण किये हुए कौस्तुभ मणिको भी परम शोभा प्रदान करता है। भगवान्की चार भुजाओंका एवं चक्र तथा उज्ज्वल शंख, गदा और पद्मका ध्यान करे। तदनन्तर निर्मल प्रकाशमान कौस्तुभ मणिका ध्यान करे। पुनः भगवान्के चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंके हिलनेसे प्रकाशमान निर्मल कपोल एवं ऊँची नासिकासे युक्त मुखारविन्दका ध्यान करे। तदनन्तर चलायमान भ्रुकुटियोंसे सुशोभित कमलके समान भगवान्के नेत्रका ध्यान करे। एवं भक्तोंका मंगल करनेवाली मन्द मुस्कान-युक्त चितवनका ध्यान करे जो कि संसारके शोकाश्रुकी शोषक है।

इस प्रकार भगवान्के भिन्न-भिन्न अङ्गोंका ऐसी लगनसे

ध्यान करे कि चित्त तन्मय होकर चंचलता छोड़ दे। इस प्रकारके ध्यानके अभ्याससे भक्तका हृदय द्रवीभूत होकर पिघल जाता है। हर्षके कारण उसे रोमांच हो आता है। एवं भगवान्‌के दर्शनकी उत्सुकतासे भक्तकी आँखोंमें आनन्दाश्रुकी धारा चल पड़ती है। तथा दर्शनसे प्राप्त आनन्दातिरेकमें धीरे-धीरे मनका व्यापार शिथिल पड़ता जाता है। अभ्यास बढ़नेपर जैसे तेल-बत्तीके न रहनेसे दीपशिखा अपनी महाज्योतिमें लीन हो जाती है, वैसे ही विषयके अभावमें चित्त ध्याता, ध्यान और ध्येयरूप त्रिपुटीसे रहत होकर अखण्ड परमानन्दस्वरूप परमात्मामें लीन हो जाता है। उस अन्तिम अवस्थामें प्राप्त साधकको अपनी देहसे बैठने-उठने एवं आने-जानेका भी कोई ज्ञान नहीं रहता, जैसे मदिरा-के मदसे मदान्ध पुरुषको अपने देहमें लपेटे हुए वस्त्र रहने या गिरनेकी सुधि नहीं रहती है। उसका शरीर तो प्रारब्धके अधीन रहता है। जबतक आरम्भक प्रारब्ध शेष है तबतक वह जीवित रहता है, प्रारब्ध समाप्त होनेपर अखण्ड ब्रह्ममें लीन हो जाता है। "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" ब्रह्म होता हुआ ही ब्रह्म-में लीन हो जाता है अर्थात् पहिले भी ब्रह्म था, अविद्यासे अपनेको जीव मानता था; विद्यासे अविद्या निवृत्त होनेपर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इस स्थिति-प्राप्तिके साधन एवं स्वरूपका वर्णन (भागवत, सप्तम स्कन्ध, अ० ७ में) प्रह्लादजी इस प्रकार करते हैं—

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च।
संगेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च॥
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम्।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः॥ (३०-३१)

गुरुकी सप्रेम सेवा, अपनेको प्राप्त सभी वस्तुओंके भगवदर्पण, सत्संग, भगवान्‌की उपासना, भगवत्कथामें श्रद्धा, प्रभुके गुण-कर्मोंके कीर्तन, उनके चरण-कमलोंके चिन्तन, भगवत्प्रतिमाओंके

दर्शन तथा पूजन आदि साधनोंसे भगवान्में स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो जाता है। जब अनन्य प्रेम होता ह तब—

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥

भगवान्के लीला-विग्रहके द्वारा किये गये कर्म एवं उनके पराक्रमको सुनकर तथा भगवान्के स्वरूप-दर्शनसे परमानन्दके उद्रेकसे रोमांचित तथा आँसुओंसे गद्गद-कण्ठ होकर जोर-जोरसे गाने-रोने तथा नाचने लगता है। तथा–

यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥

ग्रहग्रस्तके समान लाज त्यागकर, कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी ध्यान करता है, कभी लोगोंकी वन्दना करता है तथा भगवान्में तन्मय हो निःसंकोच होकर बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ 'हे हरे! हे जगत्पते! हे नारायण!' कहने लगता है।

इस प्रकार भक्तिसे सब वासनाओंके बीज दग्ध हो जाते हैं, मन एवं शरीरके भगवद्भावमें रंग जानेसे प्राणी सब प्रकारके बन्धनोंसे छूट जाता है। ध्यानका प्रबल अभ्यास बढ़नेपर भक्त धीरे-धीरे तन्मय हो जाता है। तन्मय होनेपर शनैः-शनैः मन शिथिल होकर निर्विषय तथा निराधार हो जाता है। त्रिपुटीका अभाव हो जानेपर सर्वोपाधिरहित अखण्ड अनन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त पूर्ण एकरस परमानन्दस्वरूपमें एकीभाव हो जानेपर

जीव कृतार्थ हो जाता है। सब प्रकारके शोकोंसे तर जाता है। श्रुति कहती है—"तरति शोकमात्मवित्" (छा०) इसी अवस्थाका नाम भूमा है, यही अमृत है। भूमाका अर्थ पूर्ण है; जो पूर्ण है वही अमृत है, वही परमानन्द है। जो अल्प है वह अनित्य है, जो अनित्य है वह मर्त्य है, दुःखरूप है।

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य परमानन्दकी प्राप्ति है। जो परमानन्द है वही अमृत है, वही जीवकी परागति है, वही मनुष्यमात्रका श्रेय है—'यल्लाभान्नापरो लाभः।' यही परमानन्द भगवान् श्रीकृष्णका यथार्थ स्वरूप है।

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनि।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥
नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

इस अवस्थाकी प्राप्ति अनेक जन्म-जन्मान्तरके पुण्य उदय होनेपर होती है। इस अद्वय सर्वोपाधिविनिर्मुक्त अवस्थाको वेदान्तमें ब्रह्मात्मैकत्व शब्दसे कहा गया है। फिर भी वेदान्तकी प्रक्रिया इससे भिन्न है। यही पर सत्य है "सत्यं परं धीमहि"।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये॥

जो अनन्त शक्तिसम्पन्न सत्यस्वरूप भगवान् समय-समयपर मत्स्यादि अनेक रूपोंको धारणकर संसारका कल्याण करते हैं वे आज भी हम सब लोगोंका कल्याण करें।

क्वचिन्मत्स्यः कूर्मः क्वचिदपि वराहो नरहरिः
क्वचित्सर्वो रामो दशरथसुतो नन्दतनयः।
क्वचिद् बुद्धः कल्किर्विहरसि कुभारापहतये
अजः सर्वो नित्यो विभुरपि तवाक्रीडनमिदम्॥

॥ इति शम् ॥

भगवान् श्रीरामका शिलालेख

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालान्
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः ॥ १ ॥

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यं
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणाम् ।
आपातमात्रमधुरो विषयोपभोगो
धर्मः परं न सुहृदा न विरोधनीयः ॥ २ ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी नम्रतापूर्वक भावी राजाओंसे बार-बार याचना करते हैं कि आपलोगोंको समय-समयपर मनुष्योंसे सामान्य धर्मोंका पालन कराते रहना चाहिये ॥ १ ॥

यह पृथिवीका आधिपत्य वायुके वेगसे घूमनेवाले बादलके समान छिन्न-भिन्न होनेवाला है एवं प्राण तृणके अग्र भागमें पड़े ओस-कणके तुल्य क्षणिक हैं और विषय-भोगोंमें रमणीयता प्रतीतिमात्र है, अतः हितैषी नरेशोंको परम धर्मसे विरोध नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥